चौथा अध्याय
दक्षिणा का रहस्य

श्री साई महाराज के दर्शनों के लिए आने वाले लोगों के सकाम भक्तों की संख्या ही अधिक रहती थी। हर एक व्यक्ति किसी-न-किसी कारण से त्रस्त या पीडित होकर श्री साई के आशीर्वाद से अपने दु:खो का शमन करने के लिए ही शिरडी आता था। श्री बाबा भी ऐसे भक्तों की मनोकामनायें पूर्ण कर उनके दु:खी संतप्त मन को स्वभावत: ही अत्यंत कल्याण की ओर लगा देते थे। लोंगो का उद्धार करना ही उनके जीवन का लक्ष्य था। उनके मन में भरी हुई बैरागी-वृत्ति की कोई सीमा नही थी। आरम्भिक काल में वे भिक्षा माँगते थे और तम्बाकू के लिए केवल अपने निकटवर्ती भक्तों से एक-दो पैसे ही स्वीकार करते थे। इसके उपरान्त उन्होने दक्षिणा माँगना आरम्भ किया और जब उनके अवतार-कार्य की समाप्ति का समय आया तो उनका यह दक्षिणा माँगने का परिमाण अपनी चरम सीमा तक पहूँच चुका था, यह निर्विवाद सत्य है। परंतु इसमें भी श्री साई महाराज का निजी स्वार्थ नही था। श्री बाबा के दक्षिणा माँगने के पीछे कैसा पावन उद्देश्य था और उसमें कितना गहन अर्थ भरा हुआ था, यह लोगों को प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा ज्ञात हुआ। श्री बाबा भक्तों से दक्षिणा के रूप में रूपये लेते थे और वे सब जन-कल्याण के कार्यो मे ही व्यय कर देते थे। स्वयं वे बिल्कुल कोरे ही रहते थे। दक्षिणा के रूप में एकत्र हुए अधिकांश धन को वे धर्मार्थ खर्च करते थे और कुछ रूपया ऐसे निर्धन भक्तों मे भी बाँट देते थे, जिन्हें धन की अत्यन्त आवश्यकता होती थी। अनेक भक्तों के मन में यह शंका उत्पन्न होना बिल्कुल स्वाभाविक है कि श्री साई बाबा जैसे विरक्त संन्यासी को लोगों से धन लेने की आवश्यकता या अभिलाषा ही क्यों हुई ? श्री बाबा तो इस विषय में वास्तव में सर्वथा विरक्त थे। लोगों द्वारा इधर-उधर फेंकी हुई अधजली दियासलाइयाँ एकत्र

करके भी श्री बाबा उन्हें अपनी जेबों मे ठूँस कर रखते थे। आरम्भ में वे किसी से भी रूपये-पैसे की अपेक्षा नही रखते थे। यदि किसी भक्त ने आग्रह सहित कुछ दक्षिणा दे भी दी तो उसे तेल, तम्बाकू और धूनी के लिए ईंधन मंगाने में खर्च कर देते थे। सत्पुरूष के दर्शनों के लिए खाली हात जाना उचित न समझते हुए अनेक भक्त ने श्री बाबा को दक्षिणा अर्पण करने की प्रथा आरम्भ की थी। पर श्री बाबा ने भी भेंट की गई दक्षिणा को शीघ्र ही लौटा देने का उपक्रम शुरू किया। बाद में जब हजारों लोग श्री बाबा के दर्शनो के लिए आने लगे तो दक्षिणा का ढेर लगने लगा। हमारे स्मृति ग्रंथो और शास्त्रों में गुरू को दी जाने वाली दक्षिणा के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। दान करने से जो पुण्य लाभ होता है, उसे यदि ध्यान में रखे तो श्री साई महाराज के भक्तों द्वारा भेट की गई दक्षिणा ग्रहण करने में भी कोई अतिक्रमण या असंगति दिखाई नहीं देती। भक्तों के अंत:करण की सच्ची जिज्ञासा तथा एकनिष्ठ का अनुमान लगाने के लिए गुरू के पास यही उपाय होता है। व्यक्ति में दान देने की प्रवृत्ति जब बढने लगती है, तब ही उसके संसारिक-मोह-पाश के बन्धन शिथिल होते जाते है और उसका भावना-प्रधान मन परमेश्वर-चिंतन मे तन्मय होता जाता है। श्री बाबा के दान माँगने में अन्य उद्देश्य भी था। उन्होंने अपने ही मुख से यह उद्गार व्यक्त किये थे कि ''मुझे भक्तों से जो कुछ प्राप्त होता है, मुझे उसका हजारो गुना उन्ही को लौटाना पडता है।''

मराठी रंगभूमि के एक सुप्रसिद्ध नट श्री गणपतराव बोडस ने अपने आत्म-चरित्र में एक स्थान पर यह लिखा है कि श्री साई बार-बार उन से दक्षिणा माँगा करते थे। एक बार तो उन्होंने अपने पास की अन्तिम पाई भी श्री बाबा के चरणों पर रख दी और स्वयं रिक्त हस्त हो घर लौट आए। परंतु कुछ ही दिनों के बाद उन्हें यह अनुभव हुआ की उनकी उत्तरोत्तर उन्नति होती जा रही है। उन्हे अपने कारोबार मे बहुत संपत्ति और यश प्राप्त हुआ। यह श्री बाबा में उनकी दृढ निष्ठा एवं श्रद्धा का ही परिणाम था।

श्री साई महाराज के दक्षिणा माँगने के ढंग भी तो अत्यंत विस्मयकारी तथा मति कुंठित करने वाले होते थे। जैसे कोई धन्वन्तरि एक ही औषधि कम -अधिक मात्रा में देकर विभिन्न रोगियों के विविध प्रकार के रोगों का परिहार करता है, वैसे ही श्री बाबा के दक्षिणा माँगने में भी विविध एवं गूढ प्रयोजन निहित होते थे।

श्री म्हालसापति ने आरम्भ मे ही जिस काशीराम नामक सज्जन की श्रीसाई महाराज से भेंट करायी थी, वह श्री बाबा को नित्य कुछ दक्षिणा दे दिया करता था। अपनी दिनभर की सारी कमाई वह श्री बाबा के पास लाकर रख देता था। श्री बाबा अपनी इच्छा के अनुसार जितना चाहते, उतना रख कर बाकी पैसा उसे लौटा देते थे। यह क्रम बहुत दिनों तक चलता रहा। पंरतु बाद में काशीराम के मन में अहंकार उत्पन्न हो गया। उसके मन में ''अपने गुरू को दक्षिणा देने की मुझ मे क्षमता है।'' इस प्रकार का अभिमान जागृत हो उठा। यदि किसी दिन श्री बाबा दक्षिणा स्वीकार नहीं करते थे तो भी काशीराम को दु:ख होता था। उसका मन उदास रहता था। भक्त के मन में ऐसी भावना का उदय होना भी परमार्थ-प्राप्ति के लिए घातक है। काशीराम की मन:स्थिती विचलित हुई देख कर श्री बाबा ने भी कईबार दक्षिणा माँगने का उपक्रम आरम्भ किया। अन्त में काशीराम की इतनी दयनीय अवस्था हुई कि श्री बाबा के सम्मुख कोई तुच्छ भेट रखने के लिए भी वह स्वयं को पूर्ण असमर्थ अनुभव करने लगा। श्री बाबा ने उसे दक्षिणा की राशि पूर्ण करने के लिए साहूकार से ऋण लेने की भी आज्ञा दे दी। काशीराम पर ऋण का बोझ दिन-ब-दिन बढता गया। गाँव का कोई मनुष्य उस अपने द्वार पर भी नही फटकने देता था। ये सब लिलीएँ श्री बाबा जान बूझकर ही कर रहे थे। अन्त में काशीराम पश्चाताप से विदग्ध हुआ। उसका सारा अहंकार मोम की भाँति पिघल गया। ''मै श्री साई बाबा को क्या दे सकता हूँ, अपने सद्गुरू को देने के लिए मेरे पास रखा ही क्या है?''

इस प्रकार सच्चे पश्चाताप की भावना का उसके हृदय में विकसित हुई। इसके साथ ही मानो किसी ने सचमुच कोई जादू-टोना किया हो, उसकी आर्थिक स्थिति में एकाएक परिर्वतन हुआ। उसकी उत्तरोत्तर उन्नति होती गई और उसने अपने जीवन का अंतिम समय अत्यंन्त सुख तथा संतोषपूर्वक बिताया।

प्रो. नारके नामक एक सज्जन से श्री साई महाराज ने एक बार पन्द्रह रूपये दक्षिणा माँगी। उन्होने साफ कह दिया कि उन के पास एक फूटी कौडी भी नही है। तब श्री बाबा हँसकर बोले-''तुम्हारे पास दक्षिणा देने के लिए कुछ भी नही है, यह मैं जानता हूँ। पर, तुम आज 'योगवासिष्ठ' ग्रंथ में जो अध्याय पढकर आए हो, उसका सारांश मुझे बतलाओगे तो मैं समझ लूँगा कि मुझे मेरी दक्षिणा मिल गई।''संयोगवश कहिए या श्री बाबा की लीला कहिए, प्रोफेसर साहब सचमुच ही उस दिन 'योगवासिष्ठ' के पंद्रहवे अध्याय का अध्ययन कर रहे थे।

इसी प्रकार एक बार सौ. राधाबाई तर्खंड से भी साई महाराज ने छः रूपयों की माँग की थी। राधाबाई को इस बात का बडा दुःख हुआ की उनके पास इतने रूपये नहीं थे। इस पर उनके पति ने उन्हें समझाया कि श्री बाबा ने जो माँगा है। उसका लाक्षणिक अर्थ ध्यान में लेना आवश्यक है। छः रूपयों का अर्थ षड्रिपु (काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, ईर्षा) ऐसा समझ कर उनका दमन करना तुम्हें सीखना चाहिये। श्री बाबा ने भी राधाबाई के पति का यह स्पष्टीकरण सर्वधा उचित ही समझा और तब उन्होंने दक्षिणा माँगने का हठ छोड दिया।

किसी दिन तो श्री साई दक्षिणा के रूप में बहुत-सा धन एकत्रित करते थे। पर दुसरे दिन उनके पास एक भी पैसा नही रहता था। एक क्षण में अमीर तो दुसरे क्षण में फकीर। ऐसी उनकी विलक्षण अवस्था थी। कुछ ऐसे भी उदाहरण है, जब उन्होंने कुछ भक्तों को पचास-पचास या सौ-सौ रूपये

नित्य-नियम-पूर्वक दिये। तात्पर्य यह है की दक्षिणा लेने में श्री साई बाबा का अपना उद्देश्य कुछ निराला ही होता था। भक्तो की परीक्षा लेना, उन्हें दान का महत्त्व समझाना और आत्मशुद्धि के मार्ग पर लाना, इन्ही उदात उद्देश्यो से प्रेरित होकर श्री बाबा दक्षिणा की याचना करते थे ।

बम्बई के ठाणा शहर के तहसीलदार देव साहब श्री साई के अनन्य भक्तों में से एक थे। उन्होंने गंभीर अध्ययन एवं सत्य-संशोधन कर इस विवादग्रस्त विषय पर अपने विचार प्रकट किय है, जो वास्तव में बडे मननीय है। श्री देव कहते है, ''श्री साई महाराज हर एक व्यक्ति से दक्षिणा नही माँगा करते थे। न माँगते हुए भी यदि किसीने दक्षिणा अर्पण की, तो इच्छा होने पर ही स्वीकार करते थे, अन्यथा तुरन्त ही लौटा देते थे। कुछ विशिष्ट व्यक्तियों से ही वे दक्षिणा की याचना करते थे। जो लोग यह विचार मन में रखत थे कि श्री बाबा उनसे अवश्य दक्षिणा माँग लेंगे और इसी संकल्प से अपने साथ दक्षिणा लाते भी थे, उन्ही से श्री बाबा दक्षिणा लेते थे। वैसे श्री बाबा स्वयं कभी भी दक्षिणा नही माँगते थे। श्री बाबा की इच्छा के विरूद्ध यदि किसी ने हठात् दक्षिणा अर्पण कर भी दी तो वे उसे स्पर्श तक नही करते थे। वरन् उल्टे, 'चले जाओ, नही माँगते' कहकर भक्त को दक्षिणा वापिस लेने के लिये बाध्य करते थे। भक्त की निजी इच्छा और उसके मन का भाव देखकर ही श्री बाबा पैसे माँगते थे। दक्षिणा माँगते समय निर्धन और धनी के भेदभाव से वे बिल्कुल दूर रहते थे। किसी धनी व्यक्ति से केवल इसी भावना से कि वह धनवान् है, वे कभी कुछ नही माँगते थे। दक्षिणा की याचना करने के पश्चात् यदि किसी अन्य भक्त के हाथ श्री बाबा को अर्पण करने के लिए कुछ दक्षिणा भेजता और वह श्री बाबा के पास आकर दक्षिणा देने में टालमटोल करता या भूल जाता तो श्री बाबा उसे देखते ही दक्षिणा का स्मरण दिलाते थे और उससे बिल्कुल ठीक-ठीक रकम वसूल करते थे।''

अनेक अवसरों पर तो श्री साई महाराज दी हुई दक्षिणा लौटा कर भक्त को उन पैसों का यत्नपूर्वक रखने का आदेश देते थे और कभी कभी कुछ भक्तों को तो उन पैसों को कुल-देवता के साथ ही पूजा-स्थान में रखकर उनकी नित्य पूजा करने की आज्ञा देते थे। श्री बाबा के हाथों से प्रसाद के रूप में मिले हुए इन रूपयों की पूजा करने से अनेक भक्तों का भाग्योदय हुआ और उनका पूर्ण कल्याण हुआ। कभी-कभी तो श्री बाबा भक्तों की इच्छा कि विरूद्ध उनसे अधिक दक्षिणा की याचना करते थे और कभी आवश्यकतासे अधिक दक्षिणा मिलने पर उसे तुरन्त लौटा दिया करते थे। कुछ भक्तों से तो एक ही दिन में तीन-तीन, चार-चार बार दक्षिणा माँगते थे। शिरडी संस्थान में जितनी भी मूल्यवान् वस्तुएँ है, वे सब श्री बाबा से भेट के रूप में ही प्राप्त हुई है। यदि कोई भक्त भारी मूल्यवान वस्तु अर्पण करता था तो श्री बाबा बहुत क्रोधित हो जाते थे। श्री बाबा ने ऐशोआराम की सारी वस्तुओं का परित्याग किया था। उनकी वृत्ति पूर्णत: सन्तोषी तथा निस्पृह थी। परमार्थ-साधन के मार्ग में कनक और कामिनी महान संकटदायी है, यह तत्त्व लोगोंके मनमें प्रतिबिंबित करने के उद्देश्य से ही उन्होंने दक्षिणा माँगने का मार्ग ग्रहण किया था। राधाकृष्णमाई के घर भक्तों को भेज कर वे उनकी परीक्षा लेते थे। इन दोनो परीक्षाओं में तप कर कुन्दन हुए भक्तों को ही श्री बाबा का अनुग्रह प्राप्त होता था। अन्त में, तात्पर्य यह है की श्री साई महाराज के दक्षिणा माँगने के सम्बन्ध में कोई व्यक्ति अपने मन में ऊटपटाँग विचार उत्पन्न न होने दे और स्वयं ही श्री बाबा के दक्षिणा माँगने के पीछे छिपे गूढ अर्थ को समझने का प्रयत्न करे, ताकि उसे स्वयं ही समाधान प्राप्त हो जाय।

❋ ❋ ❋ ❋ ❋